www.ijarp.com ISSN 2456-9992 Page: 01-10
International Journal Advanced Research Publications
Research Article
Volume: 02
Issue: 04

बौद्ध एवं वैदिक परंपरा में नैतिकता और कर्म: अभिधम्मत्थसङ्गहो एवं भगवद्गीता के संदर्भ में

Braham Pal Singh (Bhikkhu Vimal Bodhi)*[1], Dr. Praveen Kumar[2], Dr. Champalal Mandrele[3]

[1]PhD Research Scholar, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002

[2]Professor, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002

[3]Assistant Professor & HOD, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002

Article Received: 02 March 2026, Article Revised: 20 March 2026, Published on: 10 April 2026

***Corresponding Author: Braham Pal Singh**
PhD Research Scholar, Samrat Ashok Subharti School of Buddhist Studies, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut-250002

DOI: https://doi-doi.org/101555/ijarp.6302

Bauddh evam Vaidik Parampara mein Naitikta aur Karma: Abhidhammatthasangaho evam Bhagavad Gita ke Sandarbh mein

सारांश

प्रस्तुत शोध "बौद्ध एवं वैदिक परंपरा में नैतिकता और कर्म: अभिधम्मत्थसङ्गहो एवं भगवद्गीता के संदर्भ में" इन दोनों महान दार्शनिक परंपराओं के नैतिक एवं कर्म-सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। बौद्ध परंपरा में अभिधम्मत्थसङ्गहो के आधार पर कर्म को मुख्यतः मानसिक चेतना (चित्त) और उसकी प्रवृत्तियों से उत्पन्न माना गया है, जहाँ "चेतना ही कर्म है" का सिद्धांत केंद्रीय भूमिका निभाता है। इस दृष्टिकोण में नैतिकता का आधार चित्त की शुद्धि, करुणा, मैत्री तथा अहिंसा जैसे मानवीय गुणों में निहित है। इसके विपरीत, वैदिक परंपरा के प्रमुख ग्रंथ भगवद्गीता में कर्म को कर्तव्य (धर्म) के रूप में देखा गया है, जिसमें निष्काम कर्म (फल की इच्छा के बिना कर्म करना) को सर्वोच्च आदर्श माना गया है। गीता में नैतिकता का आधार धर्मपालन, आत्मसंयम, समत्व और ईश्वर के प्रति समर्पण में निहित है।

इस शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि दोनों परंपराएँ कर्म को मानव जीवन का मूल आधार मानती हैं, किन्तु उनके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण अंतर भी है। बौद्ध दर्शन कर्म को मनोवैज्ञानिक और अनुभवजन्य प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि गीता कर्म को आध्यात्मिक और धार्मिक कर्तव्य के रूप में देखती है। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि दोनों परंपराओं का अंतिम लक्ष्य मानव जीवन को दुःख, बंधन और अज्ञान से मुक्त करना है—जहाँ बौद्ध परंपरा निर्वाण की प्राप्ति पर बल देती है, वहीं गीता मोक्ष की प्राप्ति को लक्ष्य मानती है। इस प्रकार यह शोध दोनों परंपराओं के नैतिक एवं कर्म-सिद्धांतों की समानताओं और भिन्नताओं को स्पष्ट करते हुए आधुनिक समाज के लिए उनके व्यावहारिक महत्व को भी रेखांकित करता है।

मुख्य शब्दः- कर्म, नैतिकता, अभिधम्मत्थसङ्गहो, भगवद्गीता, चित्त, चेतना, निष्काम कर्म, धर्म, निर्वाण, मोक्ष, करुणा, मैत्री, समत्व, आत्मसंयम।

प्रस्तावना

बौद्ध दर्शन में नैतिकता (शील) का आधार मूलतः चित्त की शुद्धि पर आधारित है। अभिधम्मत्थसङ्गहो में नैतिकता को किसी बाहरी नियम, सामाजिक अनुशासन या दैवी आदेश के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे व्यक्ति के आंतरिक मानसिक संस्कारों और चित्त की अवस्थाओं से उत्पन्न होने वाली प्रक्रिया के रूप में समझाया गया है। यह दृष्टिकोण बौद्ध दर्शन को अत्यंत वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक बनाता है, क्योंकि यहाँ नैतिकता का स्रोत बाह्य जगत नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना है।

अभिधर्म के अनुसार "चेतना ही कर्म है"—अर्थात् व्यक्ति के सभी कर्मों का मूल उसके चित्त में निहित होता है। इस प्रकार नैतिकता का आधार बाह्य क्रियाओं से अधिक मानसिक प्रवृत्तियों में है। यदि चित्त शुद्ध है, तो व्यक्ति के वचन और कर्म स्वतः शुद्ध हो जाते हैं; और यदि चित्त अशुद्ध है, तो उसके कार्य भी अशुद्ध और दुःखदायी बन जाते हैं।

बौद्ध परंपरा में कुशल (शुभ) और अकुशल (अशुभ) चित्त की अवधारणा के माध्यम से नैतिकता को व्यवस्थित रूप से समझाया गया है। लोभ (लालच), द्वेष (घृणा) और मोह (अज्ञान) से युक्त चित्त अकुशल माना जाता है। ये तीनों मानसिक दोष (किलेस) मानव दुःख के मूल कारण हैं। इनके प्रभाव में किया गया प्रत्येक कर्म दुःखद परिणाम उत्पन्न करता है और व्यक्ति को संसार के चक्र में बाँधता है। इसके विपरीत, करुणा (दया), मैत्री (प्रेम), प्रज्ञा (ज्ञान), श्रद्धा (विश्वास) और स्मृति (सतर्कता) जैसे गुणों से युक्त चित्त कुशल कहलाता है। कुशल चित्त व्यक्ति को नैतिक आचरण की ओर प्रेरित करता है और उसे मानसिक शांति, संतुलन तथा अंततः निर्वाण की ओर अग्रसर करता है।

अभिधर्म दर्शन में नैतिकता का उद्देश्य केवल सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को मानसिक शुद्धि और आत्म-विकास की ओर ले जाना है। इस संदर्भ में 'शील' (नैतिकता), 'समाधि' (एकाग्रता) और 'प्रज्ञा' (ज्ञान) को बौद्ध साधना के तीन प्रमुख स्तंभ माना गया है। शील के माध्यम से व्यक्ति अपने आचरण को नियंत्रित करता है, जिससे चित्त में स्थिरता आती है। बौद्ध नैतिकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इसमें किसी स्थायी आत्मा या ईश्वर की अवधारणा पर निर्भरता नहीं है। यहाँ नैतिकता पूरी तरह कारण-कार्य संबंध (प्रतीत्यसमुत्पाद) पर आधारित है। व्यक्ति अपने कर्मों के लिए स्वयं जिम्मेदार है, और वही अपने कर्मों के फल का अनुभव करता है। इस प्रकार बौद्ध नैतिकता अत्यंत व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक और अनुभवजन्य है। यह व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण, आत्मसंयम और मानसिक शुद्धि के माध्यम से जीवन को बेहतर बनाने का मार्ग प्रदान करती है।

वैदिक परंपरा में नैतिकता की अवधारणा (भगवद्गीता के संदर्भ में)

वैदिक परंपरा में नैतिकता का आधार 'धर्म' है, जो व्यक्ति के कर्तव्यों, आचरण और जीवन के उद्देश्य को निर्धारित करता है। भगवद्गीता में नैतिकता को केवल सामाजिक नियमों तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि इसे आध्यात्मिक उन्नति और ईश्वर की प्राप्ति से जोड़ा गया है। गीता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का एक 'स्वधर्म' होता है, जो उसकी प्रकृति, स्थिति और कर्तव्यों के अनुसार निर्धारित होता है। इस स्वधर्म का पालन करना ही नैतिक जीवन का मूल आधार है। गीता में अर्जुन के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्य का पालन बिना किसी भय, मोह या स्वार्थ के करना चाहिए।

गीता की नैतिकता का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है—निष्काम कर्म। इसका अर्थ है कि व्यक्ति को अपने कर्मों को फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"—यह प्रसिद्ध सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, न कि उसके फल पर। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य व्यक्ति को आसक्ति (attachment) से मुक्त करना है। जब व्यक्ति फल की इच्छा से मुक्त होकर कर्म करता है, तो उसका चित्त शांत और संतुलित रहता है। यह स्थिति उसे आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाती है।

गीता में नैतिकता के अन्य महत्वपूर्ण तत्वों में समत्व (equanimity), आत्मसंयम (self-control), भक्ति (devotion) और ज्ञान (wisdom) शामिल हैं। समत्व का अर्थ है—सुख और दुःख, लाभ और हानि, जय और पराजय में समान दृष्टि रखना। यह मानसिक संतुलन व्यक्ति को स्थिरता और शांति प्रदान करता है। आत्मसंयम गीता की नैतिकता का एक अन्य महत्वपूर्ण अंग है। इसमें व्यक्ति को अपनी इंद्रियों और मन को नियंत्रित करने की शिक्षा दी जाती है। बिना आत्मसंयम के नैतिक जीवन संभव नहीं है, क्योंकि अनियंत्रित इंद्रियाँ व्यक्ति को अशुभ कर्मों की ओर ले जाती हैं।भक्ति भी गीता की नैतिकता का एक

महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें व्यक्ति अपने कर्मों को ईश्वर को समर्पित करता है और स्वयं को केवल एक साधन के रूप में देखता है। यह दृष्टिकोण अहंकार को समाप्त करता है और व्यक्ति को विनम्रता तथा समर्पण की भावना प्रदान करता है।

गीता में नैतिकता को तीन गुणों—सत्त्व, रजस और तमस—के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। सात्त्विक कर्म शुद्ध, निष्काम और कल्याणकारी होते हैं; राजसिक कर्म स्वार्थ और आसक्ति से प्रेरित होते हैं; और तामसिक कर्म अज्ञान और मोह से उत्पन्न होते हैं। यह वर्गीकरण यह स्पष्ट करता है कि नैतिकता का स्तर व्यक्ति की मानसिक स्थिति और गुणों पर निर्भर करता है। इस प्रकार वैदिक परंपरा में नैतिकता एक व्यापक अवधारणा है, जो धर्म, कर्तव्य, आत्मसंयम, भक्ति और ज्ञान के समन्वय से निर्मित होती है। यह व्यक्ति को न केवल सामाजिक रूप से उत्तरदायी बनाती है, बल्कि उसे आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में भी प्रेरित करती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध और वैदिक दोनों परंपराओं में नैतिकता का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु उनके आधार और दृष्टिकोण में अंतर है। बौद्ध परंपरा में नैतिकता का आधार चित्त की शुद्धि और मानसिक अवस्थाओं में निहित है, जबकि वैदिक परंपरा में यह धर्म, कर्तव्य और ईश्वर-समर्पण पर आधारित है। दोनों ही परंपराएँ मानव जीवन को उच्चतर नैतिक और आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचाने का प्रयास करती हैं। जहाँ बौद्ध दृष्टिकोण आत्मनिरीक्षण और मानसिक शुद्धि पर बल देता है, वहीं वैदिक दृष्टिकोण कर्तव्य पालन और निष्काम कर्म के माध्यम से जीवन को सार्थक बनाने का मार्ग दिखाता है। अतः इन दोनों परंपराओं का अध्ययन यह दर्शाता है कि नैतिकता केवल नियमों का पालन नहीं, बल्कि आंतरिक शुद्धि और बाह्य आचरण के संतुलन का परिणाम है, जो अंततः मानव जीवन को शांति, संतोष और मुक्ति की ओर अग्रसर करता है।

कर्म सिद्धांत का दार्शनिक आधार: बौद्ध एवं वैदिक दृष्टिकोण

भारतीय दार्शनिक परंपराओं में कर्म सिद्धांत का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध और वैदिक दोनों ही परंपराएँ इस बात को स्वीकार करती हैं कि मानव जीवन के सुख-दुःख, उत्थान-पतन और जन्म-मरण का आधार कर्म है। तथापि, इन दोनों परंपराओं में कर्म की परिभाषा, स्वरूप और उसके संचालन के सिद्धांतों में महत्वपूर्ण अंतर पाया जाता है। बौद्ध परंपरा में कर्म को मूलतः मानसिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। यहाँ "चेतना" को ही कर्म कहा गया है—"चेतनाहं भिक्खवे कम्मं वदामि"। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति का वास्तविक कर्म उसकी मानसिक प्रवृत्ति है, न कि केवल बाह्य क्रिया। यदि किसी कर्म के पीछे शुद्ध और करुणामय चित्त है, तो वह कुशल कर्म है; और यदि उसके पीछे लोभ, द्वेष या मोह है, तो वह अकुशल कर्म है। इसके विपरीत, वैदिक परंपरा में कर्म को व्यापक अर्थ में लिया गया है,

जिसमें शारीरिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के कर्म सम्मिलित हैं। भगवद्गीता में कर्म को व्यक्ति के कर्तव्य (धर्म) के रूप में देखा गया है। यहाँ कर्म का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था और धर्म की रक्षा भी है।

बौद्ध परंपरा में कर्म का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

बौद्ध दर्शन में कर्म को एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अभिधर्म के अनुसार चित्त की प्रत्येक अवस्था किसी न किसी कर्म का कारण बनती है। इस दृष्टिकोण में बाहरी क्रिया की अपेक्षा आंतरिक मानसिक स्थिति को अधिक महत्व दिया गया है। कुशल (शुभ) चित्त—जैसे करुणा, मैत्री, प्रज्ञा—से उत्पन्न कर्म व्यक्ति को सुख और शांति की ओर ले जाते हैं। इसके विपरीत, अकुशल (अशुभ) चित्त—जैसे लोभ, द्वेष और मोह—से उत्पन्न कर्म दुःख और बंधन का कारण बनते हैं। इस प्रकार बौद्ध कर्म सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति स्वयं अपने जीवन का निर्माता है। उसके विचार, भावनाएँ और मानसिक अवस्थाएँ ही उसके भविष्य को निर्धारित करती हैं। यहाँ किसी बाहरी शक्ति या ईश्वर की आवश्यकता नहीं मानी गई है।

वैदिक परंपरा में कर्म का धार्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप

वैदिक परंपरा में कर्म का स्वरूप अधिक व्यापक और धार्मिक है। भगवद्गीता में कर्म को धर्म, कर्तव्य और जीवन के उद्देश्य के साथ जोड़ा गया है। यहाँ कर्म केवल व्यक्तिगत क्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक और दैवी व्यवस्था का एक अंग है।

गीता में कर्म को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है—

- **सात्त्विक कर्म** – जो शुद्ध, निष्काम और कल्याणकारी होता है।
- **राजसिक कर्म** – जो स्वार्थ और आसक्ति से प्रेरित होता है।
- **तामसिक कर्म** – जो अज्ञान, आलस्य और मोह से उत्पन्न होता है।

यह वर्गीकरण यह दर्शाता है कि कर्म की गुणवत्ता व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्ति और गुणों पर निर्भर करती है।

गीता का एक प्रमुख सिद्धांत है—निष्काम कर्म। इसमें व्यक्ति को अपने कर्तव्य का पालन बिना फल की इच्छा के करने का उपदेश दिया गया है। यह सिद्धांत व्यक्ति को आसक्ति से मुक्त करता है और उसे आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है।

कर्म-विपाक (फल) की अवधारणा: बौद्ध दृष्टिकोण

बौद्ध दर्शन में कर्म के परिणाम को 'विपाक' कहा जाता है। यह विपाक कर्म के स्वाभाविक परिणाम के रूप में उत्पन्न होता है। यहाँ यह प्रक्रिया पूर्णतः कारण-कार्य संबंध (प्रतीत्यसमुत्पाद) पर आधारित है। कुशल कर्मों का परिणाम सुखद अनुभवों के रूप में सामने आता है, जबकि अकुशल कर्मों का परिणाम दुःखद अनुभवों के रूप में प्रकट होता है। यह प्रक्रिया स्वतः संचालित होती है और इसमें किसी दैवी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। अभिधर्म के अनुसार चित्त-प्रवाह (stream of consciousness) ही कर्म और विपाक को एक जीवन से दूसरे जीवन तक ले जाता है। इस प्रकार कर्म-विपाक का सिद्धांत पुनर्जन्म और संसार के चक्र को समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कर्म-फल की अवधारणा: वैदिक दृष्टिकोण (भगवद्गीता के संदर्भ में)

वैदिक परंपरा में कर्म के फल को ईश्वर की व्यवस्था से जोड़ा गया है। भगवद्गीता में यह स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल अवश्य मिलता है, किन्तु उसे फल की चिंता नहीं करनी चाहिए। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"—इस सिद्धांत के माध्यम से यह बताया गया है कि व्यक्ति का अधिकार केवल कर्म करने में है, न कि उसके परिणाम पर। फल का निर्धारण ईश्वर या दैवी व्यवस्था द्वारा किया जाता है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य व्यक्ति को कर्म के बंधन से मुक्त करना है। जब व्यक्ति फल की इच्छा त्याग देता है, तब उसका कर्म बंधन का कारण नहीं बनता, बल्कि मुक्ति का साधन बन जाता है।

तुलनात्मक विश्लेषण: समानताएँ और भिन्नताएँ

बौद्ध और वैदिक दोनों परंपराओं में कर्म सिद्धांत के कुछ महत्वपूर्ण समान तत्व हैं—

- दोनों ही कर्म को जीवन का आधार मानती हैं।
- दोनों के अनुसार व्यक्ति अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी है।
- दोनों ही परंपराएँ नैतिक जीवन और आत्मसंयम पर बल देती हैं।

किन्तु इनके दृष्टिकोण में कुछ प्रमुख भिन्नताएँ भी हैं—

- बौद्ध दर्शन में कर्म को मानसिक चेतना के रूप में देखा गया है, जबकि वैदिक परंपरा में यह कर्तव्य और धर्म के रूप में है।
- बौद्ध दर्शन में कर्म-विपाक एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जबकि गीता में यह ईश्वर-नियंत्रित व्यवस्था का भाग है।
- बौद्ध दृष्टिकोण अधिक मनोवैज्ञानिक और अनुभवजन्य है, जबकि वैदिक दृष्टिकोण धार्मिक और आध्यात्मिक है।

आधुनिक संदर्भ में कर्म सिद्धांत की प्रासंगिकता

आज के समय में भी बौद्ध और वैदिक दोनों परंपराओं के कर्म सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हैं। बौद्ध दृष्टिकोण व्यक्ति को यह सिखाता है कि वह अपने विचारों और मानसिक अवस्थाओं को नियंत्रित करके अपने जीवन को बेहतर बना सकता है।

दूसरी ओर, गीता का निष्काम कर्म सिद्धांत व्यक्ति को कर्तव्यनिष्ठ, आत्मसंयमी और समर्पित बनने की प्रेरणा देता है। यह दृष्टिकोण तनाव, चिंता और असंतोष को कम करने में सहायक है। इस प्रकार बौद्ध एवं वैदिक परंपराओं में कर्म सिद्धांत और कर्म-विपाक की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि दोनों परंपराएँ मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। बौद्ध दर्शन जहाँ चित्त और मानसिक शुद्धि के माध्यम से कर्म को समझाता है, वहीं वैदिक परंपरा कर्म को धर्म, कर्तव्य और ईश्वर-समर्पण के संदर्भ में प्रस्तुत करती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों परंपराएँ भिन्न होते हुए भी एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं—मानव को दुःख, बंधन और अज्ञान से मुक्त करना तथा उसे एक उच्चतर, शांत और संतुलित जीवन की ओर ले जाना।

नैतिकता और कर्म का अंतिम लक्ष्य: निर्वाण एवं मोक्ष

भारतीय दार्शनिक परंपराओं में नैतिकता (शील/धर्म) और कर्म (कर्म-सिद्धांत) को केवल सामाजिक आचरण तक सीमित नहीं माना गया है, बल्कि इन्हें मानव जीवन के परम उद्देश्य—मुक्ति—से जोड़ा गया है। बौद्ध और वैदिक दोनों ही परंपराएँ यह स्वीकार करती हैं कि मनुष्य का जीवन केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका अंतिम लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति और दुःखों से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करना है। तथापि, इस मुक्ति की अवधारणा, उसका स्वरूप और उसे प्राप्त करने के साधनों में दोनों परंपराओं में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ पाई जाती हैं।

बौद्ध दर्शन में निर्वाण का स्वरूप

बौद्ध दर्शन में नैतिकता और कर्म का अंतिम लक्ष्य निर्वाण है। निर्वाण का अर्थ है—तृष्णा, अविद्या और क्लेशों (लोभ, द्वेष, मोह) का पूर्ण निरोध। यह ऐसी अवस्था है जहाँ जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है और व्यक्ति सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है। निर्वाण को किसी स्थान या लोक के रूप में नहीं, बल्कि एक मानसिक और आध्यात्मिक अवस्था के रूप में समझा जाता है। यह चित्त की पूर्ण शुद्धि और समत्व की स्थिति है, जहाँ कोई भी विकार शेष नहीं रहता। बौद्ध दृष्टिकोण में संसार (संसार-चक्र) दुःखमय है, और इसका मूल कारण तृष्णा (इच्छा) है। जब व्यक्ति अपने कर्मों और चित्त को इस प्रकार

शुद्ध करता है कि उसमें लोभ, द्वेष और मोह का पूर्ण क्षय हो जाता है, तब वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

यहाँ नैतिकता का सीधा संबंध निर्वाण से है। शील (नैतिक आचरण), समाधि (मानसिक एकाग्रता) और प्रज्ञा (ज्ञान) के माध्यम से व्यक्ति अपने चित्त को शुद्ध करता है और अंततः निर्वाण की अवस्था तक पहुँचता है। बौद्ध दर्शन में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि निर्वाण किसी बाहरी शक्ति या ईश्वर की कृपा पर निर्भर नहीं है। यह पूरी तरह व्यक्ति के अपने प्रयास, साधना और कर्मों का परिणाम है।

वैदिक परंपरा में मोक्ष का स्वरूप (भगवद्गीता के संदर्भ में)

वैदिक परंपरा में नैतिकता और कर्म का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ है—आत्मा का जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाना। यह अवस्था परम शांति, आनंद और पूर्णता की स्थिति है। भगवद्गीता के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति तीन प्रमुख मार्गों से संभव है—

1. **ज्ञानयोग** – आत्मा और परमात्मा के सत्य का ज्ञान
2. **भक्तियोग** – ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और भक्ति
3. **कर्मयोग** – निष्काम भाव से कर्तव्य का पालन

गीता में यह स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति को अपने कर्मों को फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। जब व्यक्ति अपने कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देता है और उनके फल के प्रति आसक्ति छोड़ देता है, तब वह कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है। यही स्थिति मोक्ष की ओर ले जाती है। यहाँ नैतिकता का आधार 'धर्म' है—अर्थात् अपने कर्तव्यों का पालन। जब व्यक्ति अपने धर्म का पालन निष्काम भाव से करता है, तो उसका जीवन शुद्ध और संतुलित हो जाता है, जिससे वह मोक्ष की ओर अग्रसर होता है।

निर्वाण और मोक्ष: एक तुलनात्मक दृष्टि

बौद्ध और वैदिक दोनों परंपराओं में मुक्ति का लक्ष्य समान प्रतीत होता है—दुःखों से मुक्ति और जन्म-मरण के चक्र का अंत। किन्तु इनकी अवधारणाओं में गहन दार्शनिक भिन्नता है। बौद्ध दर्शन में निर्वाण को एक ऐसी अवस्था के रूप में देखा गया है, जहाँ 'अनात्म' (no-self) का बोध होता है। यहाँ किसी स्थायी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता। निर्वाण में व्यक्ति अपने 'मैं' के भ्रम से मुक्त हो जाता है और शुद्ध चेतना की अवस्था को प्राप्त करता है। इसके विपरीत, वैदिक परंपरा में आत्मा (आत्मन्) को शाश्वत और अविनाशी माना गया है। मोक्ष का अर्थ है इस आत्मा का परमात्मा (ब्रह्म) के

साथ एकत्व। यहाँ आत्मा का अस्तित्व समाप्त नहीं होता, बल्कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करती है।

इस प्रकार, जहाँ बौद्ध दर्शन 'अनात्म' और 'शून्यता' की अवधारणा पर आधारित है, वहीं वैदिक दर्शन 'आत्मा' और 'ब्रह्म' की एकता पर आधारित है।

दोनों परंपराओं में नैतिकता और कर्म को मुक्ति प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है। बौद्ध परंपरा में नैतिकता (शील) चित्त की शुद्धि का आधार है। जब व्यक्ति नैतिक जीवन जीता है, तो उसका चित्त शांत और स्थिर हो जाता है, जिससे वह ध्यान और प्रज्ञा के माध्यम से निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। इसके विपरीत, वैदिक परंपरा में नैतिकता (धर्म) और कर्म का उद्देश्य व्यक्ति को कर्तव्यनिष्ठ और समर्पित बनाना है। जब व्यक्ति अपने कर्मों को निष्काम भाव से करता है, तो वह कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है। दोनों ही परंपराएँ यह सिखाती हैं कि नैतिक जीवन के बिना आध्यात्मिक उन्नति संभव नहीं है।

आज के समय में, जब मानव जीवन तनाव, असंतोष और नैतिक संकटों से घिरा हुआ है, तब बौद्ध और वैदिक दोनों परंपराओं के ये सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हो जाते हैं। बौद्ध दृष्टिकोण व्यक्ति को यह सिखाता है कि वह अपने चित्त को नियंत्रित करके, नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होकर और करुणा एवं मैत्री का विकास करके जीवन में शांति प्राप्त कर सकता है। दूसरी ओर, गीता का निष्काम कर्म सिद्धांत व्यक्ति को यह सिखाता है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन बिना तनाव और चिंता के करे। यह दृष्टिकोण आधुनिक जीवन की प्रतिस्पर्धा और मानसिक दबाव को कम करने में अत्यंत सहायक है।

समानताएँ और भिन्नताएँ: एक संक्षिप्त विश्लेषण

दोनों परंपराओं में कुछ महत्वपूर्ण समानताएँ हैं—

- दोनों का अंतिम लक्ष्य मुक्ति है।
- दोनों नैतिकता और आत्मसंयम पर बल देती हैं।
- दोनों कर्म के सिद्धांत को स्वीकार करती हैं।

किन्तु भिन्नताएँ भी स्पष्ट हैं—

- बौद्ध दर्शन में निर्वाण चित्त की शुद्धि और अनात्म के बोध से प्राप्त होता है, जबकि वैदिक परंपरा में मोक्ष आत्मा और परमात्मा के मिलन से।
- बौद्ध दृष्टिकोण में ईश्वर की भूमिका नहीं है, जबकि गीता में ईश्वर को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।
- बौद्ध मार्ग अधिक मनोवैज्ञानिक और अनुभवजन्य है, जबकि वैदिक मार्ग आध्यात्मिक और भक्ति-प्रधान है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध और वैदिक परंपराओं में नैतिकता और कर्म का अंतिम लक्ष्य समान होते हुए भी उनकी अवधारणाएँ और मार्ग भिन्न हैं। बौद्ध दर्शन व्यक्ति को अपने चित्त की शुद्धि, आत्मनिरीक्षण और प्रज्ञा के माध्यम से निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है, जबकि वैदिक परंपरा व्यक्ति को धर्म, निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान के माध्यम से मोक्ष की ओर ले जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों परंपराएँ मानव जीवन के नैतिक उत्थान और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। इनका तुलनात्मक अध्ययन हमें न केवल विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों को समझने में सहायता करता है, बल्कि यह भी सिखाता है कि मानव जीवन को कैसे अधिक संतुलित, सार्थक और शांतिपूर्ण बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ० भीमराव अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धम्म, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, 2007।
2. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, अभिधम्मत्थसङ्गहो, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, 2013।
3. प्रो० रामशंकर त्रिपाठी, अभिधम्मत्थसङ्गहो, वाराणसी: संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, 2017।
4. स्वामी रामसुखदास, गीता प्रबोधनी, गोरखपुर: गीता प्रेस, 1995।
5. जयदयाल गोयन्दका, श्रीमद्भगवद्गीता तत्वविवेचनी, गोरखपुर: गीता प्रेस, संवत 2081।
6. आचार्य नरेन्द्र देव, बौद्ध धर्म दर्शन, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2021।
7. डॉ० भरतसिंह उपाध्याय, पाली साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, 2013।
8. के०टी०एस० सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म: उद्भव, स्वरूप एवं पतन, ताइपेई: द बुद्ध एजुकेशन फाउंडेशन, 2005।
9. महापंडित राहुल सांकृत्यायन, बौद्ध संस्कृति, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, 2011।
10. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2023।
11. उपाध्याय बल्देव, बौद्ध दर्शन मीमांसा, नई दिल्ली: चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस, 2017।
12. आचार्य सत्यनारायण गोयंका, गौतम बुद्ध: जीवन परिचय और शिक्षा, महाराष्ट्र: विपश्यना विशोधन विन्यास, 2022।
13. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली: न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, 2001।